शोध लेख : भीष्म साहनी का नाट्य साहित्य सृजन और संदर्भ

-प्रिया कौशिक
शोधार्थी, पीएच.डी (हिंदी), हैदराबाद विश्वविद्यालय
https://sahityacinemasetu.com/shodh-lekh-bheeshm-sahni-ka-natya-sahitya-srijan-aur-sandharbh/

प्रगतिशील चेतना संपन्न रचनात्मक भीष्म साहनी के नाटक, हिन्दी नाटकों के संसार में अपनी खास पहचान रखते हैं। यों उनके नाटकों में विद्यमान द्वंद्वात्मक वितान उनके कथा साहित्य में भी पूरी तौर पर समाया है। यही कारण है कि उनकी कहानियों, उनके उपन्यासों में नाट्य रूपांतर की बेहतर संभावनाएं मौजूद हैं। **'हानूश', 'कबिरा खड़ा बाज़ार में', 'माधवी' और 'मुआवज़े' ये सभी नाटक साहित्य में विशिष्ट स्थान रखते हैं। विशिष्ट इस मायने में कि ये सभी सत्ता प्रतिष्ठानों के विरोध में की गई कार्यवाहियों, व्यवस्था के कुरूप और वीभत्स चेहरों की पड़ताल करते हुए कलात्मक और मानवीय सरोकारों की पैरवी करते हैं।'***(प्रगतिशील नाटककार : भीष्म साहनी, लवकुमार लवलीन)*** /** राजनीतिक सत्ता, धार्मिक सत्ता और इन्हें प्रश्रय देने वाली विभिन्न ताकतों को भीष्म जी न केवल बेनकाब करते हैं बल्कि अपनी जनपक्षधर दृष्टि के साथ इसके समानांतर एक वैकल्पिक व्यवस्था को खड़ा करते हैं। **'ऐतिहासिक, मिथकीय और समसामयिक सदंर्भों से रचे कथानकों को तीन अंकीय नाट्य-योजना में बांधकर वे सामाजिक-राजनीतिक सरोकारों को व्यक्त करते हैं।'***(आधुनिक हिंदी नाटक प्रगति और प्रभाव, डॉ. नगेन्द्र)* / पाठक और दर्शक के समक्ष नाटकों के माध्यम से देश-दुनिया की उस तस्वीर को भीष्म जी सामने लाते हैं, जो ज़ुल्म की बुनियाद पर खड़े है। भीष्म जी उसकी तह में जाकर, उसके अनेक चेहरों की शिनाख्त करते हुए, तमाम अंतर्विरोधों से गुजरकर, उसके अवश्यभावी अंत को कलात्मकता के साथ रचते हैं। कहीं बहस-मुबाहिसें, कहीं व्यंग्य, कहीं घनभूत द्वंद्व और कहीं चरम तनाव स्थितियाँ इनके नाटकों में शामिल हैं। भीष्म साहनी हमारे समय की चेतना के प्रहरी हैं। उनके नाटकों में हम भारतीय समाज के धड़कते हुए जीवन को महसूस कर सकते हैं।

'हानूश' (1976 में रचित और 1977 में पहली प्रस्तुति दिल्ली में राजिन्दरनाथ के निर्देशन में) किसी खास काल और स्थान से जुड़ा हुआ नाटक नहीं है। बकौल भीष्म जी दो-एक तथ्यों को छोड़कर इसका सारा कथानक काल्पनिक है। नाटक की प्रेरणा ज़रूर उन्हें 1960 के आसपास चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में घूमते हुए एक घड़ीसाज और उसकी अजीबोगरीब मौत की कहानी से मिली लेकिन फिर भी यह ऐतिहासिक नाटक नहीं है। **'यह नाटक हानूश के जरिए कलात्मक सरोकरों, कलाकार के तनावपूर्ण और संघर्षरत जीवन, कला से फायदा उठाने वाली राजनीतिक, धार्मिक और व्यापारिक सत्ताओं द्वारा कलाकार के श्रम से सृजित कृति को अपनी जागीर या निजी सम्पत्ति समझकर हड़प लेने की कलाविरोधी, मानविरोधी चालों को सामने लाता है'।***(नाटक जौर नाट्य शैलियाँ, डॉ. दुर्गा प्रसाद द्विवेदी)* / इस दृष्टि से देखें तो न हानूश किसी समय विशेष से बंधा कोई एक फनकर है, न ही उसका शोषण करने वाली सत्ताएं ही समय विशेष से बंधी हैं। यही कारण है कि जैसे-जैसे कल्पनाशील कलाकार और नए परिवर्तन के पक्षधर विचारकों पर सत्ताओं का शिंकजा कसेगा या नाटक और प्रासंगिक होगा। इस तरह ये नाटक व्यापक परिप्रेक्ष्य और गहन निहितार्थों से युक्त नाटक है।

जीवन के सत्रह अनथक वर्ष एक घड़ी को समर्पित करने वाला हानूश अपनी तमाम आर्थिक, पारिवारिक दिक्कतों से जूझता है'।(साठोत्तरी हिंदी नाटककार, लवकुमार, लवलीन)। साधनहीन कुफ्ल्साज़, ताले ही बनाने वाला मामूली कारीगर समाज और अपनी पत्नी की नज़र में सम्मान अर्जित नहीं कर पाता। भीष्म साहनी ने पेशे में भी लगातार शिकस्त झेलता है। बाज़ार में नई किस्म के ताले बनाने वाले कारीगर आ रहे हैं। पूरे नाटक में वह पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक तनाव सहता हुआ भी दिन-रात एक बूढ़े लोहार के साथ अपनी घड़ी के लिए नित नए प्रयोग करता है। नाटक के कई दृश्य ऐसे हैं जहाँ जीवन की सारी परेशानियों के बीच में घिरकर भी वह अपने काम में तल्लीन है। सफल होने का उत्साह और अपने श्रम में उसकी अगाध आस्था सारी विपरीत परिस्थितियों से हार नहीं मानती। उसका पादरी भाई कहता है- **"तुम अपनी स्थिति पहचानो हानूश! कात्या वक्त से पहले बूढ़ी हो चली है। तुम अपना एक बेटा खो बैठे हो। कात्या पर सारे घर का बोझ है, तुम्हारे ताले अब बिकते नहीं दूसरे कुफ्ल्साज़ बाज़ार में आ गए हैं। उधर कोई तुम्हें मदद देने को तैयार नहीं और यह काम माली इमदाद के पूरा हो नहीं सकता। इस पर तेरह साल का लंबा अरसा बीत चुका है और तुम्हारा कुछ बना-बनाया नहीं।"**(हानूश, भीष्म साहनी)

हानूश कुछ पल के लिए विचलित होकर नई कमानी के प्रयोग में लग जाता है। इस लंबी संघर्ष यात्रा को दिखाने के लिए नाटककार ने कई दृश्य रचे जहां तमाम घटनाक्रम अपनी गति से हानूश के ईद-गिर्द चल रहा है और वह उन सबसे बेखबर अपने काम में डूबा रहता है। उसके काम में सफलता ओर असफलता का मंच पर रचता ध्वनि बिंब है घड़ी टिक्-टिक्, जो कभी अपनी ध्वनि के साथ उत्साह डुबोती है तो रूकने पर निराशा में और फिर से नए प्रयोगों के चक्र में। 1977 में लिखे इस नाटक को इसीलिए कई लोगों ने आपातकालीन परिदृश्य से जोड़कर देखा। अभिव्यक्ति का संकट पैदा करना सत्ता के लिए कितना सोचा-समझा हथियार है और जनता उसी छीनी जा रही अभिव्यक्ति के लिए देर-सबेर लामबंद होगी, यह नाटककार का विश्वास है। सच्ची कला व्यापक जन को समर्पित है, उसे किसी भी हद में बांधना नामुमकिन है। फिर वो हदबंदी राजा की ओर से हो या हानूश की ओर से। कला सृजित होकरा व्यापक जन की धरोहर है- 'हानूश' नाटक तमाम संघर्षों के बाद इसी अंतिम सत्य की पैरवी करता है।

हानूश की सफलता के बाद भीष्म जी का दूसरा मंचित नाटक था- 'कबिरा खड़ा बाज़ार में' (1981 में लिखे इस नाटक की पहली प्रस्तुति उसी वर्ष रंगकर्मी एम.के.रैना के निर्देशन में हुई)। युगचेता और भविष्यदृष्टा कबीर पर नाटक लिखने की वजह को नाटककार ने नाटक की भूमिका में ही स्पष्ट कर दिया है कि कबीर को अधिकांश लोग आध्यात्म के पक्ष से देखते-दिखाते हैं। उन लोगों की नज़र में यह आध्यात्म धर्म से जुड़ा है पर भीष्म जी का यह नाटक जिस पक्ष से लिखा गया है उसके बारे में उन्होंने साफ लिखा-**"मेरी समझ में कबीर का 'अध्यात्म' मूलतः उनकी मुनष्य मात्र के प्रति समदृष्टि, प्रेमभाव, भक्तिभाव और व्यापक 'धर्मेतर' दृष्टि से पनपकर ही निकला है।"** (कबीरा खड़ा बाज़ार में, भीष्म साहनी) भीष्म जी, कबीर के अनहद और आडंबर विरोध को एक ही रचनात्मक दृष्टि की उपज मानते हैं। जबकि कई दर्शकों और विद्वानों ने इस नाटक में आध्यात्म की उपेक्षा का सवाल उठाया। नाटक में कबीर के समय की धर्मांधता, आडंबर प्रियता, उत्पीड़न के बीच शांत लय में निर्भीक कबीर को परखने की कोशिश नाटककार ने की है। एक बड़े व्यक्तित्व पर केन्द्रित होते हुए भी तीन अंकों का यह नाटक अपनी गति और घटना-विन्यास की दृष्टि से भीष्म जी अन्य नाटकों की तरह चुस्त और उतना प्रभावी नहीं बन पाया है। जबकि गीत पक्ष पर नाटककार ने सबसे अधिक काम इसी नाटक में किया और भाषाई स्तर पर भी

अवधी, भोजपुरी, खड़ी बोली और उर्दू का प्रयोग नाटक में मिलता है। नाटक की प्रस्तुति में संवाद की भाषा पर रामजी मिश्र ने अपना सहयोग मित्र भीष्म साहनी को दिया था।

संतकाव्यधारा के अन्य समकालीन कवियों के साथ कबीर को जड़ समाज पर प्रहार करते, धार्मिक संकीर्णता का विरोध करते, जुल्म का प्रतिकार करते हुए सामान्य मनुष्य की तरह अपने जन्म के बारे में उत्सुक होना नाटककार ने दिखाया है।'(भीष्म साहनी : व्यक्ति और रचना, सं. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर)। लोई के संदर्भ में कबीर का स्त्री अधिकार का चिंतक पक्ष भी सामने आया है। 'सत्संग' और 'सहभोज' जैसी प्रथा चलाने वाले कबीर के इस ऐतिहासिक पक्ष और काल्पनिक समावेश वाले नाटक को लिखते हुए जहां भीष्म जी ने ऐतिहासिक तथ्यों की खोज में तकलीफे उठाई वहाँ बाद में लिखे 'आलमगीर' (औरंगज़ेब पर आधारित) और 'रंग दे बंसती चोला' (जलियांवाला बाग हत्याकांड की 75वीं सालगिरह पर एन.बी.टी. के आग्रह पर स्कूली बच्चों के लिए लिखी पुस्तक, जिसे बाद में नाटक का रूप दिया गया।) जैसे नाटकों में तथ्यों से भरी भरपूर सामग्री उनके पास थी।

'कला की समाजिकता की पैरवी और शुद्ध कला का विरोध करके भीष्म जी सौंदर्यशास्त्र की पुरानी और जड़ दृष्टि पर प्रहार करते हैं और नए सौंदर्यबोध की ज़रूरत पर बल देते हैं।'(नाट्य विमर्श. नर नारायण)| चाहे कथ्य का मामला हो या भाषा का कबीर के जरिए नाटककार न केवल के समय के सच को (भाखा बहता नीर) बल्कि आज तक साहित्य के खेमे में जारी बहस में अपना पक्ष एकदम साफ करते हैं। कला, सोद्देश्यता की हामी है और इसका एक महत्वपूर्ण पक्ष जनजीवन और जनभाषा है जिसमें सौंदर्य के जड़ नहीं गतिशील बिन्दु शामिल है।**'सौंदर्य महलों तक समिति नहीं, झौंपड़ियें में हैं'- प्रेमचंद के ये शब्द, प्रेमचंद की परंपरा के वाहक और उसका अपने तरीके से विकास करने वाले नाटककार भीष्म जी के संदर्भ में कितने अर्थवान हो उठते हैं। कबीर की वणी जो कबीर के समय का अतिक्रमण कर आज भी गूंजती है- "मैं इंसान को हिन्दू और तुर्क की दृष्टि से नहीं देखता, मैं उसे केवल इंसान की नज़र से, खुदा के बंदे की नज़र से देखता हूँ।'** (वही)

माधवी (1984 में लिखे इस नाटक की आरंभिक प्रस्तुतियों का श्रेय निर्देशक अरविंद गौड़ और परवेज़ को जाता है।) की मिथकीय कथा को नाटक में तब्दील करके भीष्म जी ने एक तार्किक, समकालीन दृष्टि से इस कथा का मूल्यांकन तो किया ही बल्कि माधवी जैसा एक नया चरित्र भी गढ़ा। ये एक तरह से माधवी का कायांन्तरण ही था जिसमें अर्थ की नई व्यंजना रची गई है- 'माधवी' की कथा का पुर्नपाठ करने और महाभारत के प्रसंग से भिन्न नया चरित्र गढ़ने की ठोस वजह भीष्म जी की आत्मकथा में ही मिल जाती है'- **"कथा, मुख्यतः तीन पुरुष पात्रों-ययाति, गालव और विश्वामित्रा की भूमिका पर केन्द्रित थी। नाटक तो लिखा गया। मैंनें कथानक के नाते तो तो 'महाभारत' में वर्णित कथा के ही प्रसंग रखे परन्तु नाटक के केन्द्र में माधवी आ गई। यह उसी की कहानी है, पित्तृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री की अवहेलना और शोषण की कहानी।"**(वही, पृ. 239)| भीष्म जी की कल्पना से बनी माधवी हमें महाभारत की कथा की माधवी से पूरी तौर पर जुदा लगती है मूल कथा की माधवी जिसे किसी को वस्तु के रूप में सौंपे जाने पर कोई आपत्ति नहीं। ऐसी लड़की जिसे किसी भी स्थिति में रखे दें वह कुछ नहीं कहेगी कोई प्रश्न नहीं पूछेगी। ऐसे में कैसे मिलती भीष्म जी को मूल कथा में विश्वामित्र से उसके सहवास के अनुरोध की भत्र्सना? क्योंकि ये तो माधवी का फर्ज़ था कि उसे अपने पिता के दान की रक्षा हर सूरत में करनी थी। दूसरी ज़रूरी बात जिसने भीष्म जी को चैंकाया कि ऐसे स्त्री पात्र के लिए सहानुभूति का एक शब्द भी कथा में नहीं था। भला बताइये कैसे होगा कोई शब्द सहानुभूति का? आखिर उसने ऐसा किया ही

क्या था? परंपरा में ढली, पितृसत्ता के साए में पली एक फर्माबरदार बेटी की तरह वह फजर् के काम ही तो आ रही थी फिर कैसी प्रशंसा और कैसी सहनुभूति अब महाभारत की कथा से प्रेरित भीष्म जी माधवी की बात करते हैं जिसके लिए भावक और सामाकि के मन सहानुभूति पैदा होती है। **'इस नाटक में जो द्वंद्व गालव के मन में माधवी को पाने का है उसका मुख्य कारण प्रेम नहीं वह वरदान है जो माधवी के अजर-यौवन और चक्रवर्ती पुत्र को जन्म देने से जुड़ा है। इस तरह भोली माधवी, गालव के लोग को प्रीति मान बैठती है।'**(आधुनिक हिंदी नाटक भाषा की सृजन शीलता, डॉ. प्रेमलता)

अपनी महत्त्वाकांक्षा को छिपाकर गालव अपने प्रति माधवी के मन में गहरी सहानुभूति पैदा करता है। यही कारण है उसे प्रेमी मान बैठी माधवी उसके लक्ष्य को अपना मान लेती है। यही नहीं वस्तु के रूप में अपना मोल करती हुई गालव को आश्वासनभी देती है कि चक्रवर्ती बालक को जन्म देने वाली बात से **'किसी राजा के हाथ में मुझे सौंपना तुम्हारे लिए आसान होगा।'**(माधवी भीष्म साहनी, पृ. 4)| यहां माधवी बाज़ार की शर्तों के अनुकूल चलती दिखाई देती है। किसी भी बाज़ार में रखी जाए सौदे में मुनाफा निश्चित है। इसी भरोसे से माधवी विश्वामित्र के पास सीधे पहुंच जाती है। एक बाता और भी है कि माधवी के वस्तु में बदल जाने की कार्यवाही के बावजूद स्त्री माधवी के वशेष उसके भीतर मौजूद हैं। गालव के लक्ष्य में एकाकार हुआ लक्ष्य भी जीवित है गालव की ओर से प्रेम का कोई भी आश्वासन मिले बिना। स्त्री के प्रति जड़ पूर्वाग्रहों की कलई खोलते हुए वह यौनिकता की प्रचलित अवधारणा का विरोध करती है। वह उपभोग के रूप में आंके जाने का विरोध करती हुई तार्किक लड़ाई लड़ती है, पुरुषसत्ता के प्रतिपक्ष में खड़ी निर्भय बुलंद आवाज़ सरीखी।

हिन्दी रंगजगत में भीष्म जी का मंचित चर्चित नाटक 'मुआवज़े' रहा। (1992 में लिखे इस नाटक का पहला मंचन उसी वर्ष रा.ना.वि रंगमंडल द्वारा एम.के.रैना के निर्देशन में।) पैंतीस किरदारों की एक बड़ी टीम और तेजी से घटते घटनाक्रम के बीच यह नाटक आज़ादी के बाद राजनीतिक सत्ताओं के चेहरे को बेनाकब करता है जो पुलिस, प्रशासन, व्यापारी तबके, अपराधियों से नाभिलानबद्ध है। दंगे जिनके लिए मानवीय त्रासदी नहीं खाने-कमाने के भरपूर अवसर हैं। इसीलिए दंगे व्यवस्थित तरीके से सम्पन्न कराए जाते हैं जहां दंगों से पूर्व नेता के बयान तैयार करा दिए जाते हैं, मृतकों और घायलों के लिए मुआवाज़े की रकम तय होती है, अस्पतालों के इंतज़ामात दंगों के हिसाब के लिए जाते हैं। यही नहीं दंगों में अनुदान बांटकर राजनीतिक कुर्सी हथियाने का पैंतरा, उस दौरान सस्ती होनी वाली ज़मीनों का सौदा, ज़मीनों पर कब्जेदारी, अपराधियों और गुंडों से सांठ-गांठ, हथियारों का लेन-देन, मारे जाने वालों के आंकड़े लाठी, चाकू, बंदूकों को का बंदोबस्त, मुआवज़े के लिए लाशों का बंदोबस्त और हिन्दू-मुस्लिम दोनों सम्प्रदायों के स्वार्थी और संवेदनहीन लोगों का चरित्र सब इस नाटक में उजागर हुआ है। अंत में फिर एक टिव्स्टि नाटककार ने रचा। जग्गा अपराधी के नेता बनकर भाषण देने पर एक पुलिस वाले की एंट्री से अपराधी जग्गा घबराता है। पर खुलासा इस रूप में होता है कि पुलिस उसे उकैती के जुर्म में पकड़ने नहीं प्रोटैक्शन देने आई है। इस तरह साम्प्रदायिकता की जड़ में सत्ता और उसकी पोषक संस्थाओं के चेहरे दर्शकों के सामने आ जाते हैं। इस नाटक को मंचित करने के क्रम में एम.के.रैना ने गीतविहीन स्क्रिप्ट में फिल्मी, लोकगीत और स्वरचित गीतों केा इसमें जोड़ा। भीष्म जी के नाटकों का मंच नुक्कड़ या जनवादी नाटकों की तरह का सादा मंच रहा है पर एम.के. रैना के निर्देशन में मंचित 'मुआवज़े' अपनी प्रस्तुति में उनसे जुदा रहा। नाटक में भीष्म जी व्यंग्य का बड़ा साथक प्रयोग करते हैं। यह दिखाता है कि घटित घटनाक्रम कितना अमानवीय है। जैसे गालिब ने जैसे कहा था-

"बाज़ीचा-ए-अतफाल है दुनिया मेरे आगे।
होता है शब-ओ-रोज़ तमाशा मेरे आगे।"

(दीवान-ए-ग़ालिब)

भीष्म जी की आंखें भी यह तमाश देखती-दिखाती हैं। ऐसा तमाशा जिसमें मनुष्य की तुच्छता उजागर होती है। 'ईश्वर की बनाई व्यवस्था का तमाशा देखकर नाटककार मुस्कुराता है। वे जैसे मुस्कुराते हुए पूछते हैं- कि तुम इसे ईश्वरनिर्मित व्यवस्था कहते हो? धर्म कहते हो? समाज कहते हो? इंसानियत कहते हो? यही वह समाज है जिसका मनुष्य छोटी-छोटी इच्छाओं की खातिर दुनिया में आग लगाने को तैयार है। यह प्रहसानन केवल राजनीति पर व्यंग्य है बल्कि राजनीति उसका एक घटक है। इस तमाशे को भीष्म साहनी घनघोर तिरस्कार करते हैं। इस तमाशे में मज़ा ये कि जो मार रहा है वो भी भगवान या खुदा का नाम लेकर मार रहा है और जो मर रहा है वो भी ईश्वर-अल्लाह का नाम लेकर मर रहा है। एक पक्ष यह भी है कि जैसे मानवता का जो धर्म संकट है वह ईश्वर का भी धर्म संकट है कि वो किसके पक्ष में है- मारने वाले के या मरने वाले के? इस नाटक के संदर्भ में भीष्म जी ने एक साक्षात्मक में कहा भी- **"कभी-कभी समाज में बढ़ रही अनास्था को व्यक्त करने के लिए व्यंग्य-विद्रूप का सहारा लेना पड़ता है।"**(साक्षात्कार, भीष्म साहनी)

इप्टा के सक्रिय सदस्य भीष्म जी ने जब नाटक के क्षेत्र में 'हानूश' के संग अपना पहला कदम रखा तो उसकी स्क्रिप्ट बड़े भाई, रंगकर्मी और फिल्म अभिनेता बलराज साहनी के पास ले गए। बलराज जी ने असंतुष्ट हो, यह कहकर लौटा दिया- **"नाटक लिखना तुम्हारे बस की बात नहीं है।"** (आज के अतीत, पृ. 232)। भीष्म जी दोबारा मेहनत से स्क्रिप्त को तैयार करके बलराज जी के पास ले गए तो उन्होंने उन्हें 'नाटक के पचड़े' से दूर रहने की सलाह दी। निराश पर जिद्दी मन बार-बार नाटक के कथनक की ओर लौटता। अंततः राजिंदरनाथ के निर्देशन में जब इसका मंचन हुआ तो सारी शंकाएँ व्यर्थ सिद्ध हुई और नाटक सफल रहा और फिर एक के बाद एक नाटक और उनके मंथनों ने साबित कर दिया-नाटक लिखना भीष्म जी के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है।

भीष्म साहनी रचनाकार के साथ-साथ विशिष्ट रंगकर्मी भी रहे है उन्होंने अपने रंगकर्म के द्वारा मानकीय त्रासदी की समस्याओं को जीवन्त किया है। हमें सोचने के लिए बाध्य किया है। वे राष्ट्रीय प्रगतिशील लेखक महासंघ के अनेक वर्षों तक महासचिव भी रहे है। उनका मानता है हिन्दू या मुसलमान दोनों में से कोई भी न तो सहित्यिक करुणामय है और न क्रूर, कट्टर और निर्मम स्थितियों के बदलते ही दोनों की फितरत बदल जाती है।

भीष्म साहनी ने अपना योगदान देकर हिंदी साहित्य को श्रीवृद्धि की है, भीष्म साहनी का रचनात्मक फलक बहुत विस्तृत है और दृष्टि बहुत गहरी जो उनकी रचनाओं को पढ़ते हुए बार-बार महसूस होता है। मनुष्य के मनोभावों की जितनी समझ भीष्म साहनी को थी वे भी उनके समकालीनों में शायद कम, भीष्म जी प्रेमचंद की आलोचनात्मक यथार्थवादी परंपरा के विकास में अपना अप्रतिम योगदान करने वाले रचनाकार के रूप में प्रतिष्ठित हो गए थे। भीष्म साहनी का सहित्य वर्तमान प्रासंगिता को लिए हुए है, आज का तमाम राजनैतिक परिवेश भीष्म जी की रचनाओं के इर्द-गिर्द घुमता है।

संदर्भ

आधार ग्रंथ

1. कबिरा खड़ा बाज़ार में, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन
2. हानूश, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन
3. माधवी, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन
4. मुआवज़े, भीष्म साहनी, राजकमल प्रकाशन

सहायक ग्रंथ

1. हिंदी नाटक उद्भम और विकास, डॉ. दशरथ ओझा, राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
2. आधुनिक हिंदी नाटक प्रगति और प्रभाव, डॉ. नगेन्द्र नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
3. हिंदी नाटक परंपरा और प्रयोग, डॉ. सुधीर कुमार, संजय प्रकाशन, भजनपुरा, दिल्ली
4. आधुनिक हिंदी नाटक भाषा की सृजनशीलता, डॉ. प्रेमलता, लोकभारती प्रकाशन, दिल्ली
5. नाटक और नाट्य शैलियां, डॉ. दुर्गा प्रसाद द्विवेदी
6. प्रगतिशील नाटककार: भीष्म साहनी, लवकुमार लवलीन
7. साठोत्तर हिंदी नाटककार, लवकुमार लवलीन
8. नाट्य विमर्श, नर नारायण
9. भीष्म साहनी: व्यक्ति और रचना, सं. राजेश्वर सक्सेना, प्रताप ठाकुर।